

सम्पादकीय

भाषा से मात खाती न्याय व्यवस्था

न्या. (से.नि.) चंद्रशेखर धर्माधिकारी

भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा न्यायाधीशों की कमी को लेकर प्रकट की गई वेदना को कई लोगों ने कमजोरी माना है। वस्तुस्थिति इसके उलट है। सिर्फ न्यायाधीशों की कमी की पूर्ति से हमारी न्याय व्यवस्था पटरी पर नहीं आ जाएगी। इसमें कुछ बुनियादी कमियां अभी मौजूद हैं। प्रस्तुत सम्पादकीय उनमें से कुछ की पड़ताल कर रहा है।

भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा वेदना व्यक्त करते समय आंसू नहीं रोक पाने पर अंग्रेजी मीडिया ने दुर्भाग्यपूर्ण टीका टिप्पणी की है। वह यह भूल गये कि संवेदनशीलता कमजोरी नहीं है। जब मैं उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बना तब पिताजी ने मुझे आशीर्वाद पत्र में लिखा कि “बी इम्पार्शल बट नॉट इम्पॅसिबल” मतलब तटस्थ रहो लेकिन ‘संवेदना शून्य’ मत रहो। न्यायाधीश की यही खासियत होनी चाहिए। पत्थर तटस्थ नहीं होता वह तो पथरीला या संवेदनाशून्य होता है। मेरी दृष्टि में यदि न्यायाधीश संवेदनशील नहीं रहेगा, तो इस देश के गरीबों को या दुर्बल घटकों को कभी न्याय नहीं मिलेगा। आज की परिस्थिति में तो हर संवेदनशील व्यक्ति के आँखों में आंसू आने ही चाहिए।

यदि ‘शासन’ या लोकतंत्र के अन्य अंग अपना काम नहीं करेंगे तो हर काम न्यायपालिका करेगी और आज ऐसी ही स्थिति निर्मित हो गई है। लोगों का विश्वास इसके बावजूद सिर्फ न्यायपालिका पर है। परंतु न्यायपालिका सुचारू रूप से न्याय कर सके, न तो ऐसी व्यवस्था है न योजना और न ही वैसी मानसिकता। फिर भी न्यायालय के खिलाफ जो टीका टिप्पणी होती है, उसका मैं स्वागत करता हूँ। जातव्य है शासन के खिलाफ ही सबसे अधिक मामले अदालत में

आते हैं और प्रलम्बित हैं। इतना ही नहीं आज धनवान वर्ग निचले वर्ग को धमकी देते हैं कि उनकी बात नहीं मानी तो वे उन्हें अदालत में खींचेंगे। अर्थात् वे न्यायालयीन प्रक्रिया को शोषण की प्रक्रिया या हथियार के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं। प्रतिपक्षीय न्यायप्रणाली में प्रतिवादी पक्ष हमेशा विलंब चाहता है ताकि न्याय चाहने वाला पक्ष थककर, अन्याय सहे। वकीलों का व्यवसाय तो नोबल है, लेकिन वकालत करने वाले कई व्यवसायी नोबल नहीं हैं। उन्हें तो पैसा कमाने में दिलचस्पी है, और प्रलंबित मामलों में विलम्ब किये बिना आमदनी नहीं हो सकती। दूसरी ओर अच्छे वकील न्यायाधीश नहीं बनना चाहते इसकी वजह है धन। दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज तो सभी के लिए न्यायालय एकमात्र ‘शरणतीर्थ’ है। इसलिए इसमें जड़मूल से परिवर्तन की जरूरत है। इसलिए सिर्फ मरहमपट्टी और दोषारोपण करने से काम नहीं चलेगा।

वर्तमान न्यायप्रणाली हमें अंग्रेजों से विरासत में मिली है। गांधीजी ने कहा था, “यह प्रणाली अंग्रेजों ने नेटिव इंडियन्स (मूलनिवासी भारतीयों) को न्याय देने के लिए प्रस्थापित नहीं की थी, बल्कि अपना साम्राज्य मजबूत करने के लिए इस न्यायप्रणाली का गठन किया गया था। इस न्याय प्रणाली में ‘स्वदेशी’ कुछ भी नहीं है। इसकी भाषा,

पोशाक तथा चिन्तन सब कुछ विदेशी है।” अतीत में भारत में जो न्याय दिलाने वाली संस्थाएं विद्यमान थीं, उन्हें पूर्णतः समाप्त कर एक केन्द्रीभूत तथा सर्वव्यापी न्याय व्यवस्था अंग्रेजों ने स्थापित की। गांधीजी ने यह भी कहा था कि “जिसकी थैली बड़ी होगी उसी को यह न्यायप्रणाली सुहाती है।” प्रतिपक्षीय न्याय प्रणाली में न्याय या निर्णय करने के प्रक्रिया गवाहों पर आधारित है और सौ फीसदी सच बोलने वाला गवाह इस धार्मिक देश में कहीं अस्तित्व में ही नहीं है।

ईश्वर की सौगंध लेकर गीता पर हाथ रखकर भी असत्य या अर्धसत्य कथन कहना अदालत की चारदीवारी में आसान हो गया है। अंततः यह एक निर्णय प्रणाली है। “गांधीजी ने इसे खर्चीली (लकजरी) ऐशगाह कहा है।” और यह भी कहा है कि ‘इस प्रणाली में कुछ पापमूलक तत्व हैं जिसके कारण वकीलों को भरपूर कमाई करने का अवसर मिलता है।’ इस प्रतिपक्षीय प्रणाली का इस देश की मानसिकता या मिट्टी से कुछ भी संबंध नहीं है। इस प्रणाली में वैयक्तिक न्याय या सामाजिक न्याय मिलता ही है, यह कह पाना मुश्किल है। इसमें तो सिर्फ निर्णय मिलता है। इसलिए देश में एक समानांतर न्याय व्यवस्था प्रस्थापित करने की जरूरत है, जिसमें लोगों का प्रत्यक्ष सहभाग या सहयोग हो। अदालत की चारदीवारी में झूठ बोलना आसान है परंतु जनता के बीच बोलने की हिम्मत नहीं होती, क्योंकि सारा समाज या गांव जानता है, सत्य किसके पक्ष में है। लेकिन सभी की कोशिश होती है कि ‘सत्य’ न्यायालय के सामने न आ पाए।

आज की न्यायप्रणाली में जीतने वाला भी समाधानी नहीं है। विनोबा जी ने कहा था कि “भारत का अपना एक न्याय था और बाहर से

आया हुआ एक न्याय। भारत का न्याय था “पंच परमेश्वर द्वारा न्याय। आजकल अपने यहां जो बाहर का चलता है वह एक बोले, दो बोले, तीन बोले, पांच बोले परमेश्वर है। यह इम्पोर्टेड (आयातित) न्याय है। उसे ‘एक्सपोर्ट’ कर देना चाहिए (बाहर भेज देना चाहिए)। वेद में वाक्य आता है ‘अनुजनात् यतते पञ्चधीरा’ (ऋ.9,5,8) गांव में जो जानी, बुद्धिमानी पुरुष होते हैं वे गांव के बारे में पंचों की जो राय होती है तदनुसार सेवा करते हैं। भारत में प्राचीन समय से यही पद्धति चलती आ रही है। यह सारा इसलिए कहा कि बाबा न्याय करने से डरता है। इसलिए हमने अदालत ही मुक्ति कसौटी मानी है। इसमें न्याय की बात नहीं आती, ‘समाधान’ की बात आती है। इसलिए न्याय शब्द को छोड़ा, ‘समाधान’ शब्द को अपनाया।”

विनोबाजी के विचारों को मैंने इसलिए उद्धृत किया है ताकि न्याय प्रणाली और समाधान प्रणाली में अंतर स्पष्ट हो सके। इसी के साथ ग्रामस्वराज्य और अदालत मुक्ति का स्वरूप भी स्पष्ट हो और व्यक्तिगत न्याय और सामाजिक न्याय की कल्पना भी सामने आए कि राज व्यक्ति का नहीं, अपितु कानून का हो। लोकतंत्र ने भी यही माना है। परंतु सिर्फ कानून से समाज परिवर्तन नहीं हो सकता। यदि उसे लोकमत और लोकशक्ति का सहारा नहीं मिलेगा, तो वह दुलक जाता है। कानून रास्ता खोलता है पर उस रास्ते से जाने की प्रेरणा नहीं दे सकता। इसलिए आज की न्यायप्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन की जरूरत है। तभी न्याय और उसमें भी सामाजिक न्याय प्रस्थापित हो सकेगा।

अगर आजादी का सम्पूर्ण आशय स्थापित करना है तो जनता की भाषा में शासन व्यवहार और न्यायालीन व्यवहार अनिवार्य किया जाना चाहिए।



कामयाब होने के लिए जनता की भाषा में याने लोकभाषा में लोकतंत्र का न्याय-व्यवहार कार्य करे। वरना इसमें सिर्फ 'तन्त्र' रह जायेगा और 'लोक' गायब हो जायेंगे। उनका व्यवहार में कोई स्थान ही नहीं रहेगा। यदि लोक भाषा व्यवहार की भाषा नहीं होगी तो सामान्यजनों की न्याय व्यवहार में कोई सहभागिता या हिस्सा हो ही नहीं सकता। राज्य व्यक्ति का, या व्यक्तियों के समूह का न होकर कानून का हो अगर ऐसी अपेक्षा है तो सामान्यजनों का सकारात्मक और भावनात्मक सहयोग न्यायालयीन व्यवहार में होना चाहिए। आज न्यायालय का क्षेत्र सामान्यजन के लिए अछूता है। वहां बिचौलियों का महत्व और मूल्य अधिक है। दूसरी और कानून हाथ में लेने की वृत्ति भी बढ़ रही है। कानून की अपनी कुछ मर्यादाएं हैं। वह तब तक अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता या कामयाब नहीं हो सकता जब तक उसे लोक सम्मति का आधार प्राप्त नहीं हो। कानून हक प्रदान करता है तथा अवसर उपलब्ध करा देता है लेकिन यदि वह सामान्यजनों तक नहीं पहुंचेगा तो प्रेरणादायी नहीं हो सकता। आज तो ऐसी स्थिति है कि कानून पालन करने वालों से कानून तोड़ने वालों की प्रतिष्ठा अधिक है। इतना ही नहीं आपकी कानून तोड़ने की 'क्षमता' ही आपकी आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक 'प्रतिष्ठा' का मापदंड बनती जा रही है। दूसरी और सभी राजनीतिक पक्ष ऐसी संपूर्ण स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायप्रणाली चाहते हैं जिन्हें सिर्फ उनके ही पक्ष में निर्णय देने की स्वतंत्रता रहे। इस हालात में किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के आंखों में आंसू आयेंगे ही। उन आंसूओं में प्रायश्चित और वेदना की अहमियत है जो व्यवस्था को शक्ति प्रदान कर सकती है।

अभी यह स्थिति कायम रहेगी क्योंकि आमूलचूल परिवर्तन के बारे में सोच और चिंतन करने की मानसिकता नहीं है। आज तो यह बहस चल रही है कि संसद, शासन और न्यायपालिका में से कौन श्रेष्ठ है ? महाराष्ट्र के विदर्भ में एक लोकोक्ति प्रचलित है "दो बैलों की टक्कर में कौन सा बैल जीतता है यह संदर्भहीन है क्योंकि कोई भी जीते या हारे या किसी का भी बैल जीते। परंतु यह टक्कर जिस खेत में होती है उस खेत का 'विनाश' तो अटल है।" (सप्रेस)